SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली : एक अध्ययन

मंदीप कुमार चौरसिया, शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
मंदीप कुमार चौरसिया, शोधार्थी,
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 05/11/2020
Revised on : -----
Accepted on : 17/11/2020
Plagiarism : 01% on 06/11/2020

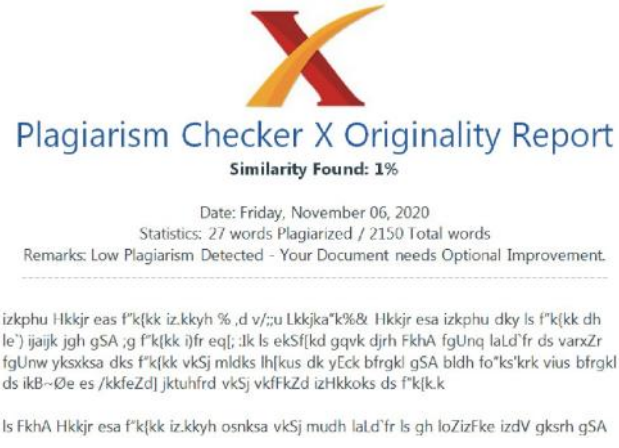
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Friday, November 06, 2020
Statistics: 27 words Plagiarized / 2150 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

izkphu Hkkjr eas f"k{kk iz.kkyh % ,d v/;;u Lkkjka"k%& Hkkjr esa izkphu dky ls f"k{kk dh le`) ijaijk jgh gSA ;g f"k{kk i)fr eq[; :Ik ls ekSf[kd gqvk djrh FkhA fgUnq laLd`fr ds varxZr fgUnw yksxksa dks f"k{kk vkSj mldks lh{kus dk yEck bfrgkl gSA bldh fo"ks'krk vius bfrgkl ds ikB~Øe es /kkfeZd] jktuhfrd vkSj vkfFkZd izHkkoks ds f"k{k.k

ls FkhA Hkkjr esa f"k{kk iz.kkyh osnksa vkSj mudh laLd`fr ls gh loZizFke izdV gksrh gSA

शोध सार

भारत में प्राचीन काल से शिक्षा की समृद्ध परंपरा रही है। यह शिक्षा पद्धति मुख्य रूप से मौखिक हुआ करती थी। हिन्दु संस्कृति के अंतर्गत हिन्दू लोगों को शिक्षा और उसको सीखने का लम्बा इतिहास है। इसकी विशेषता अपने इतिहास के पाठ्क्रम मे धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रभावो के शिक्षण से थी। भारत में शिक्षा प्रणाली वेदों और उनकी संस्कृति से ही सर्वप्रथम प्रकट होती है। वेद शब्द का अर्थ ही होता है ज्ञान। वेद मुख्य रूप से चार है ऋग्वेद, सामवेद, यर्जुवेद और अर्थवेद सबसे पहला तथा सबसे पुराना वेद ऋग्वेद तथा सबसे बाद का वेद अर्थवेद है। ऋग्वेद में ज्यादातर मंत्रो का प्रयोग देवताओ की स्तुती के लिए किया गया है। वेदों का प्राचीन काल में शिक्षा प्रणाली में बड़ा ही योगदान है।

प्राचीन बिहार में गुरूकुलों की स्थापना प्रायः वनों, उपवनों तथा ग्रामों या नगरों में शिक्षण के लिए किया जाता था। अधिकतर दार्शनिक आचार्य इन जगहों पर निवास कर शिक्षा का प्रचार–प्रसार करते थे। भारत के प्राचीन शिक्षा केन्द्र में सर्वाधिक प्रसिद्ध नालंदा महाविहार था, उसके बाद ही विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, तिलाधक महाविहार की गणना होती है।

मुख्य शब्द

वेद, संस्कृति, गुरूकुल, महाविहार, आचार्य, आश्रम, विद्यार्थी, अध्ययन।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत के इतिहास की अगर बात होती है तो सबसे पहले आज के बिहार राज्य की बात अवश्य होती है। क्योकि आज का बिहार प्राचीन काल मे बहुत ही समृद्धशाली और कई महान राजाओ का जन्मस्थली तथा शासन का क्षेत्र रहा है। प्राचीन काल में यहाँ पर तथा देश के कई हिस्सो में शिक्षा की गुरूकुल प्रणाली

की अनुठी शिक्षण की परम्परा रही है। जो विश्व के अन्य देश के प्राचीन संपादन प्रणाली मे नही पाये जाते है। गुरूकुल जिन्हे आश्रम भी कहा जाता था। यह भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली का मूल आधार भी रहा है। इन गुरूकुलो में आवासीय सुविधा भी हुआ करती थी जो पुरी तरह से प्राकृतिक वातावरण से घिरी हुई रहती थी। शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी का सर्वागीण विकास ही था। प्राचीन काल में विद्यार्थी को अन्तेवासी कहते थे, जिसका शाब्दिक अर्थ है आचार्य के सान्निध्य में वास करने वाला।[1] इन गुरूकुलो से सर्वप्रथम वेदो का अध्ययन किया जाता था। भारत का सर्वप्राचीन धर्मग्रन्थ वेद है, ये चार है– ऋग्वेद यर्जुवेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। इन चारो वेदो को संहिता कहा जाता है। ऋग्वेद में 10 मंडल, 1028 सूक्त एवं 10,426 ऋचाएँ है। इस वेद के ऋचाओ के पढ़ने वाले ऋषि को होतृ कहते है। यर्जुवेद गध एवं पद्य दोनो में है इसके पाठकर्ता को अध्वर्यु कहते है। सामवेद में यज्ञो के अवसर पर गाये जाने वाले मन्त्रों का संकलन है, तथा इसके पाठकर्ता को उदातृ कहते है। अथर्ववेद की रचना चारो वेदों में सबसे अंतिम है। इसमें मानव जीवन के सभी का विवरण मिलता है। प्राचीन भारत में शिक्षा अंतज्योति और शक्ति का स्त्रोत मानी जाती थी। जो शारीरिक, मानसिक बौद्धिक और आत्मिक शक्तियो के संतुलन विकास से हमारे स्वभाव मे परिवर्तन करती तथा उसे श्रेष्ठ बनाती है। शिक्षा हमे इस योग्य बनाती है कि हम समाज मे एक विनीत और उपयोगी नागरिक के रूप में रह सके।[2]

शिक्षण से शारीरिक उन्नति होती थी। संपूर्ण शरीर को पुष्ट करने के लिए नित्य प्रातः काल मे प्राणायाम और सूर्य नमस्कार ब्रह्मचारी के लिए आवश्यक था। शिक्षा का अर्थ केवल पुस्तकीय ज्ञान नही वरन् अंतज्योति का विकास करना था।

गुरूकुल पद्धति

गुरूकुल शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भी होता था, जिनके आधार पर हम प्राचीन शिक्षा के आदर्शो तथा उद्देश्यो के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इनमे सबसे पहला उद्देश्य व्यक्ति का चरित्र निर्माण है जिसके अंतर्गत विद्यार्थी के दिन–प्रतिदिन के जीवन मे शिष्टाचार एवं सदाचार, बड़ो का सम्मान तथा छोटे के प्रति प्यार वाला आचरण आदि सम्मलित थे। इसके बाद दुसरा उद्देश्य व्यक्ति का सर्वागिण विकास करना था, जिससे विद्यार्थीयों का बौद्धिक विकास के साथ–साथ शारीरिक विकास तथा शिक्षा के द्वारा विद्यार्थीयो में आत्म–सम्मान, आत्म विश्वास, आत्म संयम, विवेक शक्ति, न्याय आदि गुणो का विकास किया जाता था। आत्म संयम के साथ–साथ अपने इन्द्रियो की प्रवृतियो पर नियंत्रण के साथ शुद्धता एवं सादगी का निर्माण करना था। इसमे आचार्य विद्यार्थीयों को सभी प्रकार के आचारण तथा सामाजिक कर्तव्यो का ज्ञान देता था। इसके बाद सामाजिक सुख और कौशल की वृद्धि का प्राचीन शिक्षा के उद्देश्य में प्रमुख स्थान है। केवल संस्कृति अथवा मानसिक तथा बौद्धिक विकास ही नही मुख्य उद्देश्य है बल्कि सामाजिक सुख सुविधा के साथ आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करके विभिन्न शिल्पो एवं व्यवसायिक कार्यो मे निपुणता प्राप्त करना था। संस्कृति का संरक्षण तथा प्रचार प्रसार शिक्षा के पाँचवा उद्देश्य में से एक था। इसी के द्वारा ही अपनी संस्कृति के ज्ञान का प्रसार एक पीढ़ी से दुसरी पीढ़ी मे होता है। अंतिम उद्देश्य निष्ठा तथा धार्मिकता का संचार करना था। गुरूकुलों में पढाये जाने वाले पाठो, व्रतो, अनुष्ठानो, धार्मिक क्रिया कलापो से विद्यार्थी मे निष्ठा और धार्मिकता का संचार होता था।[3]

प्राचीन भारतीय समाज में गुरू का अत्यन्त आदरपूर्ण स्थान दिया गया था। उसे देवता माना जाता था। गुरू–शिष्य सम्बन्ध अत्यंत मधुर एवं सौहार्दपूर्ण थे। विद्यार्थी योग्य विद्वान आचार्य के समीप शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाते थे तथा आचार्च भी सच्चे जिज्ञासु विद्यार्थी को ही अपना शिष्य बनाता था। शिष्य उसके घर के सदस्य के रूप मे रहते हुए शिक्षा ग्रहण करता था। दोनो के सम्बन्ध पिता पुत्रवत हो जाते थे।[4] प्रायः सभी ग्रंथो मे गुरू की सेवा – शुश्रुषा को शिष्य का पुनीत कर्तव्य बताया गया है।[5]

अध्ययन का स्थान, अवधि और विधि

अध्ययन का स्थान, अवधि और विधि परिस्थितियो और कार्य के स्वरूप के अनुसार अलग होती थी। सामान्यतया गुरू का घर अर्थात् गुरूकुल ही अध्ययन का स्थान होता था और शिष्य लोग रहते थे।[6]

जिस गुरू के पास शिष्य लोग सौ योजन की दुरी से आते थे, उसे योजन शतिक गुरू कहा जाता था।[7] बाद के कालो में, नालंदा और विक्रमशिला जैसे उन्नत विद्यापीठो मे कोरिया और चीन जैसे दुर देशो से भी विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे।[8] सामान्यतः विद्यार्थी दिन मे ही पढ़ते थे, परंतु कुछ अध्ययनशील छात्रो के रात मे भी पढने के उल्लेख है। कभी कभी मनस्वी विद्यार्थी प्रकाश को हवा से बचाते हुए किसी शांत स्थान मे पढ़ते थे। प्रकाश के लिए उपले (करीष) जलाएँ जाते थे।[9] इसके अलावा व्यावसायिक शिक्षा पर भी बल दिया जाता था।

पाठ्यक्रम

शैक्षणिक सत्र की शुरूआत श्रावण के महीने मे वर्षा ऋतु की शुरूआत के साथ होती थी। अध्ययन का मुख्य विषय वैदिक पाठ था। जिसमें इतिहास और पुराण भी शामिल थे। आध्यात्मिक ज्ञान के दर्शन की की शिक्षा के लिए वेदांग का अध्ययन भी महत्वपुर्ण था। नैतिक विकास के साथ व्यक्ति विकास शैक्षणिक प्रणाली की रीढ़ है। गुरूकुलो मे शिक्षा के पाठ्क्रम मे वेद और वैदिक साहित्य, व्याकरण, तर्क और दर्शन शामिल है और साथ ही साथ चिकित्सा विज्ञान जैसे विषयो को भी शामिल किया गया। संस्कार भी शिक्षा के पाठय्क्रम मे शामिल था। इन सब पाठ्यक्रमो के लिए अत्यंत योग्य शिक्षक अथवा आचार्य गुरूकुल मे शिक्षा–दीक्षा के लिए मौजुद रहते थे।[10]

शिक्षण शुल्क

प्राचीन भारतीय शिक्षा में शुल्क प्रदान करने का कोई निश्चित नियम नही था। प्रायः शिक्षा निःशुल्क होती थी। शिक्षा प्रदान करना विद्वानो का पुनीत कर्तव्य माना गया था। जो लोग शुल्क पाने की लालसा से शिक्षा प्रदान करते थे, समाज उन्हे निंदा की दृष्टि से देखता था। राज्य तथा समाज का यह कर्तव्य था कि वह अध्ययन अध्यापन करने वाले विद्वानों के निर्वाह की उचित व्यवस्था करे। गुप्त काल में ब्राह्मण विद्वानो के निर्वाह की उचित व्यवस्था करे। गुप्त काल ब्राह्मण विद्वानो को ग्राम दान मे दिये जाते थे जिन्हे 'अग्रहार' कहा जाता था। समाज का सभी वर्ग शिक्षा को प्रोत्साहन करने के उद्देश्य से यथाशक्ति अंशदान करता था। इससे आचार्यगण आर्थिक चिन्ताओ से मुक्त होकर पुर्णतया अपने कार्य मे तल्लीन रहते थे।[11]

परीक्षा तथा उपाधियाँ

प्राचीन शिक्षा पद्धति मे आज के आधुनिक काल जैसा परीक्षा लेने और उपाधि प्रदान करने की प्रथा का अभाव था। विद्यार्थी गुरू के सीधे सम्पर्क में रहते थे। अध्ययन मुख्य रूप से याद करने पर आधारित होता था। अध्ययन की समाप्ति पर समावर्त्तन नामक संस्कार आयोजित होता था तथा तत्पश्चात विद्यार्थी एक विद्वानमंड़ली के सामने प्रस्तुत होता था तथा वहाँ उससे अध्ययन से संबंधित अत्यंत गुढ़ प्रश्न पुछे जाते थे। उसके बाद वह स्नातक बन जाता था। प्राचीन काल मे आज के जैसे परीक्षा लेने की प्रथा नही थी। प्राचीन काल मे आज के जैसे परीक्षा लेने की प्रथा नही थी। अपितु विद्वानो में वाद–विवाद होता था, जिससे विद्वान अपनी श्रेष्ठता स्थापित करता था। प्राचीन काल मे आज के आधुनिक युग के समान कोई उपाधि वितरित नही की जाती थी। उपाधि प्रदान करने की प्रथा मध्यकाल की उपज है। तारानाथ के विवरण से पता चलता है कि बंगाल के पाल शासक विक्रमशिला के छात्रो को अध्ययन की समाप्ति पर सनद (उपाधि) प्रदान करते थे।[12] प्राचीन भारत मे मुख्य रूप से तीन शिक्षण संस्थान थे जो पुरे विश्व मे विख्यात थे। वो थे तक्षशिला, नाललंदा और विक्रमशिला। इन महाविहारो में भारत के ही नही वरन् भारत के अलावे अन्य देशो से भी छात्र पढ़ने आया करते थे। प्राचीन काल में शिक्षा के क्षेत्र में पुरे विश्व मे भारत का नाम अग्रणी था। इन विद्यालयों के बारे मे संक्षिप्त रूप से व्याख्या करेंगें। हमे इन विश्वविद्यालयों के गौरव के बारे में जरूर जानना चाहिए।

तक्षशिला

तक्षशिला रावलपिंड़ी के पश्चिम की दिशा में लगभग 20 मील दुरी पर स्थित है। प्राचीन भारत मे यह असंदिग्ध रूप से सबसे महत्वपुर्ण और प्राचीन विद्या की केन्द्र थी। यह गांधार प्रान्त की राजधानी थी। इसका इतिहास अत्यंत प्राचीन है। भरत ने इसकी नीव डाली थी तथा अपने पुत्र तक्ष को वहाँ का शासक नियुक्त किया

था। उसी तक्ष के नाम पर इसका नाम तक्षशिला पड़ा। हम यह कह सकते है कि यहाँ पर आधुनिक काल जैसे कॉलेज या विश्वविद्यालय नही था। वहाँ ऐसे अनेक लब्धप्रतिष्ठ आचार्य थे, जिनके चरणो मे बैठकर अध्ययन करने के लिए भारत के कोने–कोने से सैकड़ो विद्यार्थी आते थे। विद्या के केन्द्र के रूप में 600 ई०पू० में तक्षशिला की कीर्ति अतुलनीय थी। पाँचवी शताब्दी के प्रथम चरण मे फा–हियान ने तक्षशिला की यात्रा की थी। उस समय विद्या के केन्द्र के रूप मे तक्षशिला का कोई महत्व न था। ईसा की पाँचवी शताब्दी के मध्य मे हुणों ने भारत पर आक्रमण किया और जो भी तक्षशिला बचा हुआ था, उसे भी नष्ट कर दिया।[14]

नालंदा

नालंदा पटना से दक्षिण की ओर लगभग 50 मील की दुरी पर है। अत्यंत प्राचीन काल से यह बौद्ध धर्म का केन्द्र थी, क्योकि बुद्ध के मुख्य शिष्य सारिपुत्र का जन्म यही हुआ था। इसकी स्थापना कुमारगुप्त ने की थी। इसके विकास के लिए गुप्त राजाओ ने खुलकर दान किए और इसी आय से विश्वविद्यालय का सारा क्रियाकलाप होता था। नालंदा विश्वविद्याालय कम से कम 1 मील लम्बा और 1/2 मील चौड़ा था। मुख्य विद्यालय से संबंद्ध 7 विशाल व्याख्यान मन्दिर तथा अध्यापन के लिए 300 छोटे छोटे कमरे थे। सभी भवन अति कान्तिमान और कई मंजिले ऊँचे थे। सातवीं शताब्दी के मध्य में नालन्दा में विद्यार्थियो की संख्या 10,000 रही। नालंदा केवल विहार मात्र नही था इसकी कीर्ति विद्या के केन्द्र के रूप मे ही थी। यहाँ के कुलपति अपने पाँडित्य के लिए तथा अपने निर्मल चरित्र व अध्यात्म ज्ञान के लिए भी प्रशंसित थे। धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, शीलभ्रद जैसे विख्यात आचार्य थे। यहाँ का पुस्तकालय बहुत ही विशाल था। पुस्तकालय तीन भवनो में थे जिन्हे 'रत्न सागर', रत्नोदधि तथा 'रत्नरंजन' कहते थे।[15]

विक्रमशिला

आठवी शताब्दी मे पाल राजा धर्मपाल ने इस विहार की आधारशिला रखी थी, जो चार शताब्दियो तक विद्या के केन्द्र के रूप मे अन्तराष्ट्रीय जगत मे विख्यात थी। पाल शासको के द्वारा 13वीं शताब्दी तक विश्वविद्यालय को प्रोत्साहन तथा दान मिलता गया, जिससे विश्वविद्यालय की ख्याति अल्प काल मे ही हिमालय को पार कर गई। दीपंकर श्री ज्ञान निःसंदेह विक्रमशिला के पण्डितों में श्रेष्ठ थे। उसके अलावा बुद्ध, ज्ञानपद, वैरोचन, तथागतरक्षित, रक्षित, जेतारी रत्नाकर शान्ति, ज्ञानश्री मिश्र, रत्नवज्र, अभयंकर गुप्त आदि विद्वान थे। विक्रमशिला मुख्य रूप से व्याकरण, न्याय, तत्व ज्ञान, तन्त्र तथा कर्मकाण्ड के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। तिब्बती छात्रो के आवास के लिए विश्वविद्यालय में एक विशिष्ट अतिथिगृह बनवाया गया था। यहाँ एक सम्पन्न तथा विशाल पुस्तकालय भी था। विश्वविद्यालय के प्रमुख आचार्य दीपंकर सहित कई विद्वान तिब्बत गये, जहाँ उन्होने बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार किया। 1203 ई० में मुस्लिम आक्रान्ता बख्तियार खिलजी ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय को दुर्ग के भ्रम मे ध्वस्त कर दिया।[16]

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में शिक्षा को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया। भौतिक तथा अध्यात्मिक उत्थान तथा विभिन्न उत्तरदायित्वो के विधिवत् निर्वाह के लिए शिक्षा की महत्ता को स्वीकार किया गया। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति का सर्वागीण विकास संभव था। शिक्षा से ही उद्देश्यो तथा आदर्शो की जानकारी संभव हो पाती जिससे व्यक्ति का चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यो का ज्ञान, सामाजिक सुख तथा कौशल की वृद्धि, संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार तथा निष्ठा तथा धार्मिकता का संचार संभव हो पाता। इन सभी का ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक था। गुरूकुल पद्धति, गुरू–शिष्य संबंधो की परस्पर जानकारी होती थी। प्राचीन भारत मे तक्षशिला, नालंदा तथा विक्रमशिला जैसे विश्वविख्यात विद्यालय थे। जहाँ देश के अलावा विदेशो से लोग पढ़ने आते थे। शिक्षा के बिना व्यक्ति का पूर्णरूप से विकास संभव नही था, इसी कारण इन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई होगी।

संदर्भ सूची

1. अलतेकर, अनन्त सदाशिव, (1955, 1979–80) : *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,* वाराणसी, मनोहर प्रकाशन, पृ०–23।
2. वही, पृ०–6।
3. श्रीवास्तव, के० सी०, (1991,2015–16) : *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* इलहाबाद, युनाइटेड बुक डिपो, पृ०–763–66।
4. वही, पृ०–768।
5. वही, पृ०–768।
6. चोपड़ा, पी० एन, पुरी, बी० एन एवं दास, एम. एन (1951,1981) : *भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, पृ०–164।
7. वही, पृ०–165।
8. वही, पृ०–165।
9. वही, पृ०–165–66।
10. बक्शी, एस० आर०, (2007) : *सोसल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* दिल्ली, विस्टा इंटरनेशनल पब्लिशिग, पृ०– 63–64।
11. श्रीवास्तव, के० सी० : पुर्वोक्त, पृ०–769।
12. वही पृ०–769–70।
13. अलतेकर, अनन्त सदाशिव : पुर्वोक्त पृ०– 85।
14. वही, पृ०–86।
15. वही, पृ०–89–93।
16. श्रीवास्तव, के० सी० : पुर्वोक्त, पृ०–775।

****